International Journal ofApplied Research 2016; 2(7): 130-132

ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor: 5.2
IJAR 2016; 2(7): 130-132
www.allresearchjournal.com
Received: 22-05-2016
Accepted: 25-06-2016

बलजीत कौर
गांवः केसूपुरा जिला सिरसा–हरियाणा।

Correspondence
बलजीत कौर
गांवः केसूपुरा जिला सिरसा–हरियाणा।

'आदिवासी मोर्चा' में सामाजिक विशंगतियां

बलजीत कौर

प्रस्तावना

भगवान ग्वहाड़े कृत 'आदिवासी मोर्चा' काव्य रचना में समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, शोषण, आतंक, साम्प्रदायिकता, पक्षपातपूर्ण प्रशासन, राजनीतिक भाई–भतीजावाद आदि प्रत्येक परिस्थितियों पर दृष्टिपात किया गया है। इस रचना में व्यंग्य के माध्यम से समाज की अनेक कुरीतियां और समस्याओं का अवलोकन करके उनकी समीक्षा प्रस्तुत की गई है। मनुष्य परिवार और समाज की एक ऐसी महत्वपूर्ण इकाई है, जो न केवल एक स्वस्थ समाज का निर्माण करता है बल्कि पारिवारिक तथा सामाजिक प्रक्रिया को सुचारू रूप से गति भी प्रदान करता है। परिवार तथा समाज में सामंजस्य बनाए रखना अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि मानव और समाज में कटुता होगी तो व्यवस्था नहीं बन पाएगी और इस व्यवस्था को मनुष्य ही बनाए रख सकता है। समाज में जब विभिन्न प्रकार की विसंगतियां उत्पन्न होती है तभी साहित्यकारों को उन विषयों पर व्यंग्य करने की कला को दर्शाने का अवसर प्राप्त होता है। आधुनिकता के इस युग में व्यक्ति अपने परम्परागत मूल्यों को त्याग कर उनके स्थान पर नवीन मूल्यों को ग्रहण करने की प्रक्रिया में संघर्ष एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बनती जा रही है। यह संघर्ष व्यक्ति के जीवन के प्रत्येक पहलू परम्परागत मूल्यों, नवीन मूल्यों, सामाजिक स्थिति और आर्थिक परिस्थितियों को भी प्रभावित करता है। व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार, नैतिक मूल्यों में गिरावट, पारिवारिक संबंधों में तनाव, नारी दशा, आडम्बरों का व्यर्थ दिखावा आदि को हम व्यंग्य– विसंगतियों के संदर्भ में विवेचित कर सकते हैं। व्यंग्यकार भगवान ग्वहाड़े ने आलोच्य ग्रन्थ' ''आदिवासी मोर्चा' में सामाजिक परिस्थितियों को आधार बनाया है।

परिवार समाज की ही एक इकाई है, लेकिन यह इकाई तभी बनी रह सकती है, जब समाज तथा मनुष्य में सामंजस्य हो। वह अपने कर्तव्यों को समझे तथा अपनी जिम्मेदारी को निभाए। समाज के स्वस्थ रूप के लिए परिवार का स्वस्थ निर्माण अत्यंत आवश्यक है, परंतु आधुनिक युग में परिवार को पाश्चात्य संस्कृति की नजर लग गई है। परिवार का विखण्डन हो रहा है। मनुष्य अपने आप तक सीमित रहना चाहता है। रिश्ते – नाते, भाई, मां – बाप आदि सबको भुलाकर एकांत में रहना चाहता है। परिवार का यह स्वरूप समाज की जड़ों को कमजोर करता जा रहा है तभी भगवान ग्वहाडऋम जैसे व्यंग्यकारों ने समाज में व्याप्त पारिवारिक परिस्थितियों को व्यंग्य के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयत्न किया है।

कवि ने समाज में व्याप्त पारिवारिक व्यवस्था के स्वरूप को उजागर करने का प्रयास किया है कि किस प्रकार स्नेह करने मात्र से ही व्यक्ति की मानसिकता में परिवर्तन होना शुरू हो जाता है। कवि ने पारिवारिक विसंगतियों को न केवल उजागर किया है बल्कि उसके विभिन्न रूपों की समीक्षा की है। सम्बंधों में कटुता परिवार को ही नहीं बल्कि समाज को भी खोखला कर देती है। जैसे–

'दुनिया जहान के संकटों का
करते हुए सामना
जैसे भट्टी में तपकर बन चुकी थी
खरा–सच्चा 'बावन कश्शी सोना'
गौपालन की तुम्हारी समृद्ध परम्परा से
घर आँगन बन चुका था गोकुल
हाथ में लकड़ी लेकर जबरदस्ती
खिलाया–पिलाया करती थी सबको
दूध–छाछ–घी
पर खुद रूखी–सूखी बासी रोटी से भी
मिटा लेती थी अपनी भूख

कविने यहाँ पारिवारिक विघटन का रूप दर्शाते हुए व्यक्त किया है कि आज परिवार चलाना इतना मुश्किल कार्य हो गया है कि तंगी में अपने भी धोखा दे जाते हैं उनका भी कोई दीन – ईमान नहीं रहता। कवि दूसरों के परिवारों का विखण्डन करवाकर अपना परिवार बनाने का प्रयास करने वालों पर कटाक्ष किये बिना नहीं रहते –

'जिस तरह
सहेजकर
रखी है माँ तुमने
मेरे द्वारा लिखकर भेजी गयी चिट्ठी–पत्री
सुनाया था मैंने
जिसमें पढ़ाई का हाल–चाल
सेहत का उतार–चढ़ाव, छात्रावास के भोजन और
सांस्कृतिक गतिविधियों का समाचार
पूछा था कि बापू की तबीयत का हाल

नौकरानी को भी परिवार का अंग माना जाता है। कवि कहता है कि मनुष्य अपनी गलतियों के कारण परिवार की व्यवस्था को न केवल क्षति पहुंचाता है बल्कि उसे तहस – नहस कर देता है।

'सिर्फ किताबों में या सभाओं में बोलने के लिए
अच्छे लगते हैं यह शब्द
'अतिथि देवो भवः'
यदि आते हैं कोई घर पर सगे–सम्बन्धी
ते लगते हैं भारी बोझ
भरा–पूरा संयुक्त परिवार
छीन लेता है 'पर्सनल लाइफ'
इसलिए एकता परिवार में ही
ढूँढ़ते हैं खुशियाँ और 'प्रायवेसी'

आलोच्य रचना 'आदिवासी मोर्चा' में भगवान ग्वहाड़े ने सामाजिक व्यवहार और उसमें व्याप्त विसंगतियों के प्रति अपने कटु अनुभव को व्यक्त करने के लिए अपनी रचनाओं के माध्यम से व्यंग्य – बाण छोड़े हैं। आधुनिकता के रंग में रंगा व्यक्ति अपने आचरण में जिन प्रवृतियों को बेझिझक अपना रहा है, उनमें अवसरवादिता, रिश्वतखोरी, बेईमानी आदि कुरीतियां समाज के स्वरूप को बदरंग और सामाजिक व्यवस्था को खोखला बनाती जा रही है। किसानों की दशा सुधारने के प्रयास के वादे तो प्रत्येक सरकार करती है परंतु उनकी हालत पर कोई प्रतिक्रिया नहीं होती। जहाँ पर किसानों को शुद्ध पेय जल भी प्राप्त नहीं होता वहीं पेट्रोल और डीजल के लिए मारधार मची है। भगवान ग्वहाड़े ने किसानों में पनप रही अन्तः व बाह्य विकृतियों एवं खण्डित मानसिकता परे व्यंग्य किया है–

'माँ
धूपकाल में.....
चुन लाती है जंगल से महुए के फूल
चारोली, गोंद, बिब्बा फूल, कंद मूल, तेंदू फल,
तोड़ लाती तेंदू पत्तों का ढेर
झोपड़ी में उसका लगाकर अम्बार जोड़ती रहती देर सवेर
मिल जाता अगर थोड़ा–सा भी समय
चुनती रहती ज्वार–बाजरे, गेहूँ–चावल से कंकड़
बनाकर रखती सेवई–पापड़–अचार
कूटती रहती लाल मिर्च और मसाले

समाज के परिवर्तन और सही दिशा प्रदान करने में मूल्य अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, लेकिन बदलते परिवेश और मूल्यों के व्यवसायीकरण के कारण समाज का स्तर गिरता जा रहा है। सोनकर जी के परिवर्तित मूल्यों के प्रति विचार प्रकट किए हैं। भगवान ग्वहाड़े कृत 'आदिवासी मोर्चा' व्यंग्य रचना में दिखाया गया है कि खेतिहारों को खेती के औजारों के लिए लकड़ी प्राप्त करने हेतु तहसीलदार की कचहरी में चक्कर लगाने पड़ते हैं और उधर शहरों में अपने ही कल्याण की अनेक योजना बनती हैं। देहाती हलवाहा के नसीब में भोजन–भूषा, भवन की समस्या है, यहाँ नगरीय बाबू को विदेशी वस्तुएं अप्राप्त होने से रंज है। भारतीय कृषकों के पास भूराजस्व भरने के लिए पैसे नहीं, जबकि बंबई में रेसकोर्स मैदान में घोड़ों के शौक के लिए हजारों रूपये बरबाद किये जाते हैं। वह बेचारा दिन–रात परिश्रम करता है फिर भी एक जून की रोटी मयस्सर नहीं होती और उधर पार्टी में अन्नपूर्ण ब्रह्म को फेंकने की होड़ लगी रहती है।

अपने मूलभूत अधिकारों की माँग करने के लिए
नहीं लिख सके हम आवेदन–प्रतिवेदन–निवेदन
सिर्फ हवा में तनकर उठायी
अपनी बन्द मुट्ठी
कहीं पर सुना था
एक अपने हित का शब्द
कि होता है आदिवासियों के लिए जंगल का
अधिकार
संविधान में है इस प्रकार का क्या कोई प्रावधान?
मन में पैदा हुई थोड़ी–सी धुँली–सी आस
निकल पड़ी टोलियाँ जंगल के उस पार
बजाती हुई ढ़ोलक–मजीरा
घुँघरू की करती हुई निनाद
गाँव कस्बे–शहर के रास्ते
चल पड़े महानगर में सुरक्षित
बसी राजधानी की और

पूंजीवादी वर्ग

स्वातंत्रयोतर काल में उसकी स्थिति में यही परिवर्तन हुआ कि उसने साहूकार के शिकंजे से तो मुक्ति पायी है, मगर बैंक की अर्थप्रणाली में वह फंसा हुआ है। हमारे देश किसानों का प्रत्येक वर्ग के द्वारा शोषण किया जाता है। चाहे वह नेता हो, उधोगपति हो या कोई सामाजिक व्यक्ति वे प्रत्येक दशा में किसानों की परिस्थितियों में से अपना फायदा ढूंढने का प्रयास करते हैं। सरकार भी इस काम में पीछे नहीं हटती वह भी किसानों का हितैषी होने का खोखला दावा करती है लेकिन बैंक के द्वारा लोन आदि देकर उनकी जमीन गिरवी रख ली जाती है तथा अकाल या फसल बरबाद होने की दशा में उनकी जमीनों को सरकार अपने अधिकार में ले लेती है।

कपड़ों के नाम पर चिथड़े पहने
धूप–बरसात ठंडी में
मुश्किलों से जूझता हुआ
वक्त बेवक्त रूखी–सूखी
बासी रोटी खाते हुए
जो करता है अविश्राम–श्रम
उगाता है सब्जी
करता है परिवरिश फलों की
बीज बोने से लेकर
खलिहान तक की
अनाज यात्रा से गुजरता है अन्नदाता
आढ़त–बाजार तक
मोल–भाव का नहीं उसे अधिकार
बिचौलियों से ठगा जाता है बार–बार
साल भर की लागत भी

निश्कर्श

'आदिवासी मोर्चा' के माध्यम से कवि ने यही दर्शाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार पैसे वाले लोग व्यर्थ में पैसा बहाना पसंद करते हैं। लेकिन आम–जन की सहायता के लिए कोई आगे नहीं आता। कवि ने जन–सामान्य की दयनीय दशा का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है।

संदर्भ सूची

1. महीप सिंह, यह भी नहीं, पृ0 16
2. महीप सिंह, बाद की बात, क्षणों का संकट, पृ0 228
3. महीप सिंह, सीधी रेखाओं का वृत, क्षणों का संकट, पृ0 210
4. ब्राउन साइको डाइनेमिक्स ऑफ अब्नार्मल बिहेवियर, पृ0 159
5. जुंग, टू ऐस्सेज आन अनेलिटिकल साइकालोजी, पृ0 16